# केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में राज्यपाल की भूमिका

**राजेश चौहान**
*शोधार्थी*
*(राजनीति विज्ञान)*
*राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,*
*झालावाड़ (राजस्थान)*

व्यवस्था में राज्यपाल कई पद नया नहीं हैं। अंग्रेजी शासनकाल में राज्यपाल भारत के 'वर्नर जनरल' के निर्देशन, निरीक्षण में कार्य करने वाला स्वेच्छाचारी शासक था जबकि वर्तमान संविधान के अन्तर्गत' वह राज्य सरकार का रस्मी प्रधान है। केन्द्र की तरह राज्यों में भी संसदात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। राज्यों का शासन राज्यपाल द्वारा एक लोकप्रिय तथा उत्तर दायी मन्त्रिपरिषद की सहायता से चलाया जाता है। के. एम. मुंशी के अनुसार, 'राज्यपाल राज्य में केन्द्र का पहरेदार तथा सांविधानिक सम्पत्ति का रखवाला और राज्य को केन्द्र से जोड़ने वाला देश की एकता का कर्णधार हैं।''

केन्द्र–राज्य सम्बन्ध आयोग (सरकारिया आयोग) के समक्ष राज्यपाल की भूमिका का प्रश्न संघ–राज्य सम्बन्धों के मूल मुद्दों में से एक मुद्दे के रूप में उभर कर आया है। राज्यपाल की भूमिका पर इस आधार पर आक्षेप लगाया गया कि कुछ राज्यपाल निष्पक्षता और दूरदर्शिता जिनकी उनसे अपेक्षा की गई थी, के गुणों को प्रदशित नहीं कर पाये। उन पर आरोप लगाया गया था कि इन्होंने आवश्यक विषय निष्ठता के साथ या तो अपने विवेक का उपयोग करके था संघ और राज्यों के बीच' महत्वपूर्ण सम्पर्क के रूप में अपनी भूमिका निभाकर कार्य नहीं किया। कुछ राज्यपालों द्वारा विशेष रूप से राष्ट्रपति शासन की सिफारिश में और राष्ट्रपति के विचार के लिए राज्य विधेयक को आरक्षित रखने में निभाई गई भूमिका' से जबर दस्त विद्वैध उत्पन्न हुआ। राज्यपाल को अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही उनको बार–बार हटाने और स्थानान्तरण से इस पद की गरिमा कम हो गई। इस बात' की आलोचना भी की गई है कि संघ सरकार अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राज्यपालों को प्रयोग में लाती है। बहुत–से राज्यपाल, जो कि केन्द्र के अधीन असे पद को बढ़वाने के लिए इच्छुक होते हैं, या अपनी सेवा अवधि के बाद राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाना चाहते हैं, स्वयं को केन्द्र के एजेण्ट के रूप में समझाते आये हैं।

## राज्यपाल की नियुक्ति

राज्यपाल की नियुक्ति के विषय पर संविधान निर्मात्री सभा के सदस्यों में काफी वाद–विवाद हुआ। संविधान निर्मात्री सभा की प्रान्तीय संविधान समिति ने सुझाव दिया था कि राज्यपाल का निर्वाचन राज्य की जनता द्वारा वयस्क मता धिकार के आधार पर होना चाहिए। परन्तु इस सुझाव को संविधान सभा ने स्वीकार नहीं किया। संविधान सभा का मत' था कि जनता द्वारा निर्वाचित राज्य पाल तथा विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी मुख्यमन्त्री के बीच सह–अस्तित्व सम्भव नहीं है। यही नहीं, सन् 1947 से लेकर 1949 तक शासन के संचालन का जो अनुभव संविधानवेत्ताओं ने प्राप्त किया था, उससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि यदि देश में राष्ट्रीय

एकता स्थापित करनी है तो यह आवश्यक हैं कि राज्यपाल केन्द्र और राज्यों को जोड़ने वाली सांविधानिक कड़ी के रूप में काम कर। श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने अनुभव किया राष्ट्रपति द्वारा नामांकित राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच उचित सम्बन्धों की स्थापना कर सकेगा तथा आपस में होने वाले विवादों को सुलझाने में सहायक बन सकेगा।'' स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने भी अय्यर के मत का समर्थन किया और कहा "आज की सर्वप्रथम आवश्यकता विघटनकारी एवं पृथकतावादी तत्वों को नष्ट करने की है। जनता द्वारा चुना हुआ राज्यपाल आवश्यक रूप से प्रान्तीयता एवं पृथकतावादी भावनाओं के विकास में सहयोग देगा एवं उसके चुनाव पर राष्ट्रीय धन, समय और शक्ति का अपव्यय होगा।'' अतः यह निर्णय किया गया कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाये। व्यवहार में इसका अर्थ है कि राज्यपाल की नियुक्ति प्रधानमन्त्री तथा गृह मन्त्रालय द्वारा की जाये। राज्यपाल के कार्यकाल की अवधि सामान्यतया पाँच वर्ष रखी गयी परन्तु राष्ट्रपति इससे पूर्व भी उसे हटा सकते हैं। नियुक्ति के तरीके से स्पष्ट है कि राज्यपाल राज्य में राष्ट्रपति का मनोनीत' व्यक्ति हैं, राज्य में वह राष्ट्रपति का एजेण्ट है। किन्तु इस सम्बन्ध में एक परस्परा भी विकसित होने लगी। वह यह कि राज्य विशेष में राज्यपाल की नियुक्ति करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार उस राज्य की इच्छा को जानने का प्रयत्न करती है। प्रायः सम्बन्धित राज्य के मुख्य मन्त्री से सलाह ली जाती है। यह इस लिए किया जाता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का वाता वरण बना रहे। परन्तु इस परम्परा का सभी जगह पालन नहीं किया गया। उदाहरण के लिए, केन्द्र सरकार ने जब श्रीप्रकाश को मद्रास का राज्यपाल नियुक्त किया, उड़ीसा में जब कुमार स्वामी राजा को राज्यपाल नियुक्त किया, बिहार में जब नित्यानन्द कानूनगो को राज्यपाल नियुक्त किया तो वहाँ के मुख्य मन्त्रियों से परामर्श नहीं लिया गया।[5] चौथे आम चुनाव के बाद अनेक गैर–कांग्रेसी राज्यों में मुख्यमन्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया कि उनके राज्य में

राज्यपाल की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति ने उनसे सलाह नहीं ली। इसका एक अच्छा उदाहरण पश्चिम बंगाल में मुख्यमन्त्री एवं राज्यपाल के पारस्परिक सम्बन्धों में अवलोकित किया जा सकता है। इस राज्य में धर्मवीर को राज्यपाल के पद पर राज्य सरकार के परामर्श के बिना नियुक्त किया गया था। मार्च 1969 में मुख्य मन्त्री अजय मुखर्जी नै केन्द्र से धर्मवीर को वापिस बुलाने का आग्रह किया क्योंकि वह राज्य के प्रशासन को मन्त्रिमण्डल के सहयोग के साथ संचालित करने में असमर्थ थे। परन्तु इस 'माँ' को केन्द्र ने यह कहकर ठुकरा दिया कि संघ सरकार इस परिपाटी के विरुद्ध है। कि राज्य सरकारों की इच्छा के अनुसार राज्यपालों की नियुक्ति की जाये। यद्यपि बाद में धर्मवीर को पश्चिम बंगाल से वापस बुला लिया गया तथापि केन्द्र ने कहा कि उसने वैसा राजनीतिक परिस्थितियों के कारण किया था, इसलिए नहीं कि वह मुख्य मन्त्री की इच्छा थी।

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में दूसरी परम्परा यह विकसित हुई है। कि वह आमतौर से राज्य के बाहर का व्यक्ति होता है। इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि दक्षिण में उत्तरी राज्यों के व्यक्तियों को और उत्तर में दक्षिणी राज्यों के व्यक्तियों को राज्यपाल नियुक्त किया जाए। इससे राष्ट्रीय एकता के निर्माण में सामंजस्यपूर्ण वातावरण निर्मित होता है।[6]

राज्यपाल की नियुक्ति सम्बन्धी सांविधानिक प्रावधानों से स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में भारत में जो कुछ किया गया है वह संघीय शासन प्रणाली के सिद्धान्त के साथ मेल नहीं खाता। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यपाल को सम्बद्ध राज्य की जनता निर्वाचित' करती है तथा उसकी निश्चित अवधि के पूर्व

राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित' महाभियोग प्रस्ताव के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से नहीं हटाया जा सकता। आस्ट्रेलिया में राज्य ने गवर्नर को क्राउन के द्वारा नियुक्त किया जाता है परन्तु यथार्थ में ऐसा राज्य मन्त्रमण्डल के परामर्श से किया जाता है तथा गवर्नर किसी भी दृष्टि से केन्द्र की सरकार के प्रति उत्तर दायी नहीं है। वस्तुतः भारत में राज्यपाल की नियुक्ति की प्रचलित प्रणाली उसे औपचारिक कार्यपालिका की भूमिका अदा करने की अपेक्षा संघ सरकार के एजेण्ट की भूमिक अदा करने के लिए विवश करती हैं।[7]

## राज्यपाल को दोहरी भूमिका

राज्यपाल को दो प्रकार की भूमिका निभानी होती है[8]: प्रथम, राज्य सरकार के अध्यक्ष के रूप में और द्वितीय, केन्द्र के एजेण्ट के रूप में। राज्यपाल गे यह आशा की जाती है कि वह इन दोनों भूमिकाओं में एक न्यायसंगत सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करेगा।[9] वैसे उसकी दोहरी भूमिका में कोई विरोध नहीं हैं। जब–तक कि उसकी विशेष रूप से कोई व्यवस्था नहीं हो, तब–तक राज्य पाल की केन्द्र के एजेण्ट' की भूमिका वहाँ से प्ररम्भ होती है, जहाँ उसकी राज्य के अध्यक्ष की भूमिका समाप्त होती है। इयवहार में इस प्रकार की स्थिति को स्पष्ट रूप से लेखाबद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि वह केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त होता है तथा केन्द्र द्वारा उस पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाले जाते हैं।

## राज्यपाल केन्द्र और राज्यों को जोड़ने वाली कड़ी

संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल को केन्द्र और राज्यों को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में ढाला है। मैसूर के भूतपूर्व राज्यपाल वी. वी. गिरि ने अपने को राज्य में केन्द्र का दूत' कहा था।[10] राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाल जी. एन. सिंह के विचार में वे कई मामलों में केन्द्र एवं राज्य के बीच कड़ी का कार्य करते थे।[11] वस्तुतः संविधान ने अनुच्छेद 174 के अनुसार राज्यपाल के कर्तव्य इस प्रकार के हैं कि केन्द्र के प्रतिनिधि एवं संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य कर सकता है।

संविधान ने राज्यपाल को विस्तृत रूप से यह अधिकार दिया है कि वह राज्य विधान मण्डल से पारित किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर सकता है।[12] संविधान ने उसे यह शक्ति निश्चित रूप से इसलिए प्रदान की है कि केन्द्र और राज्यों में, कानून के क्षेत्र में कोई झगड़ा उत्पन्न न हो–विशेष रूप से' समवर्ती सूची के क्षेत्र में। इसके अतिरिक्त राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयक संविधान की किसी धारा के विरुद्ध न हों, मूल अधिकार एवं निर्देशक तत्वों की अवहेलना न करता हो, संसद द्वारा पारित कानून के विरुद्ध न हो अथवा केन्द्र के ऐसे कार्यों में बाधक न हो जिनसे सार्वजनिक हित का उन्नयन होता हो तो राज्यपाल ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर सकता है। राज्यपाल को संविधान ने यह अधिकार प्रदान किया है कि वह राज्य विधान मण्डल को केन्द्र के परामर्श से सन्देश भेज सकता है, जिसका प्रभाव आवश्यक रूप से राज्य के वैधानिक कार्यक्रम पर पड़ेगा। राज्यपाल किसी भी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने से इंकार कर सकता है, अगर विधेयक संविधान के अनुच्छेदों तथा उसकी भावनाओं के विरुद्ध हो। संविधान ने राज्यपाल को अधिकार दिया है कि वह उन सब ही विधेयकों को सुरक्षित रखा सकता है जिसका सम्बन्धी सम्पत्ति के अनिवार्य कब्जा करने[13] से हो, उच्च न्यायालय की शक्ति में ह्रास कराने से सम्बन्धित हो[14], अथवा जिसमें पानी–बिजली पर कर वृद्धि एवं लये कर लगाने का प्रस्ताव हो।[15] इस सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न यह है कि किसी विधेयक को स्वीकृति न

प्रदान करने में तथा राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित करने में

राज्यपाल का राज्य मन्त्रिमण्डल की सलाह के विरुद्ध जाना कहाँ तक न्यायोचित है? राविधान के किसी भी अनुच्छेद में यह नहीं लिखा गया है कि राज्यपाल मन्त्रिमण्डल की सलाह से बाध्य होगा। इस सम्बन्ध में दुर्गादास बसु ने लिखा है, ''राज्यपाल का किसी भी विधेयक को, विशेष परिस्थितियों में, मन्त्रिमण्डल की इच्छा के विरुद्ध रक्षित करना न्यायोचित है यदि वह यह समझे कि उक्त विधेयक संविधान की धाराओं के विपरीत तथा केन्द्रीय सरकार के अधिकारों का उल्लंघन करता है।"

राज्यपाल को आवश्यकता पड़ने पर विशेष परिस्थितियों में अध्यादेश निकालने का अधिकार है।[16] करन्तु उसकी इस शक्ति पर दो प्रतिबन्ध हैं। प्रथम, अध्यादेश की घोषणा उसी रामय हो सकती है जब विधानमण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो। द्वितीय, अध्यादेश की घोषणा के लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है, विशेषकर उस समय, जबकि सम्पत्ति पर अनिवार्य कब्जा करना हो, उच्च न्यायालय की शक्तियों में कमी करनी हो, समवर्ती सूची के विषयों में एवं राज्यों में विरोध होने की जहाँ सम्भावना हो और व्यापार एवं वाणिज्य की स्वतन्त्रा पर प्रतिबन्ध लगाना हो। इस अधिकार का उपयोग राज्यपालों ने खूब किया है।[17] इससे वह राज्य और केन्द्र के बीच एक कड़ी का रूप ग्रहण कर लेता है।।

## राज्यपाल–केन्द्रीय अभिकर्ता के रूप में

केन्द्र के अभिकर्ता के रूप में राज्यपाल को कई कार्य करने पड़ते हैं। राज्य पाल का नैतिक कर्तव्य है कि वह देखे कि राज्य के कार्य केन्द्र के कार्यों के अनुकूल हों। अनुच्छेद 257 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्तियों का उपयोग केन्द्र की कार्यपालिका शक्तियों के तारतम्य में ही होना चाहिए। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यपाल राष्ट्रपति को यह प्रतिवेदन कर सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य का प्रशासन से विधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। इस पर राष्ट्रपति केन्द्रीय शासन की घोषणा कर सकता है। इस आपात्कालीन स्थिति में राज्यपाल, राज्य का केन्द्रीय प्रतिनिधि के रूप में वास्तविक शासक बन जाता है और अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा दिये गये। कार्यपालिका, वित्त एवं विधान सम्बन्धी अधिकारों का केन्द्रीय अभिकर्ता के रूप में उपयोग करता है।

केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल का मुख्य उत्तरदायित्व यह देखना है कि राज्य में सरकार सांविधानिक ढंग से चलाई जा रही है अथवा नहीं ? वह प्रति पन्द्रह दिन में राष्ट्रपति को राज्य की प्रगति एवं वर्तमान स्थिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, जिसे वह स्वतन्त्र रूप से भी भेज सकता है अथवा राज्य अन्त्रिमण्डल' की सलाह से भी हैं।

## राज्यपाल स्वतन्त्र है अथवा राष्ट्रपति का अभिकर्ता

राज्यपाल के पद को लेकर मूल कठिनाई यह हैं कि, क्या राज्यपाल अपने सभी कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्र है या उसे अपने सभी कार्य राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप में करने हैं? यह बात निश्चित है कि राज्यपाल की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती है परन्तु साथ ही साथ उसे राज्य में सांविधानिक प्रमुख की भूमिका भी निभानी पड़ती है।। भारत के अधिकांश राज्यपालों ने राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप में ही कार्य करना अधिक पसन्द किया है। ऐसा कहा जाता है कि सन् 1967 के उपरान्त उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा आदि राज्यों के राज्यपालों ने केन्द्रीय सरकार की इच्छा का ही आदर किया।

राज्यपालों का एक ऐसा भी वर्ग है जिन्होंने संविधान की आत्मा के अनुसार कार्यकर मुख्यमन्त्रियों की सलाह का आदर किया है। तामिलनाडु, कर्णाटक, प. बंगाल व पंजाब के राज्यपालों ने अपने राज्यों के मुख्यमन्त्रियों द्वारा तैयार भाषणों को विधानसभा में पढ़ा, जिनमें केन्द्र पर अनेक प्रकार के आरोप लगाए गए। उदाहरणार्थ 20 जनवरी, 1970 को तामिलनाडु के राज्यपाल उज्ज्वलसिंह ने पंचम वित्त आयोग की सिफारिशों पर निराशा व्यक्त की। 19 जनवरी, 1970 को कर्णाटक के राज्यपाल धर्मवीर ने अपने भाषण में केन्द्र पर यह दबाव डाला कि कर्णाटक–महाराष्ट्र सीमा विवाद पर 'महाजन आयोग की सिफारिशों को तुरन्त' लागू करें। 21 जनवरी 1970 को प. बंगाल के राज्यपाल श्री धवन ने भी केन्द्र पर यह आरोप लगाया कि वह निरन्तर राज्य के आर्थिक विकास की उपेक्षा कर रहा है। 19 जनवरी, 1970 को पंजाब के राज्यपाल डॉ. पावटे ने अपने भाषण में चयडीगढ़ पर कोई निर्णय न लेने के कारण केन्द्र की कड़ी निन्दा की। ऐसा कहा जाता है कि राज्य पाल धर्मवीर ने कर्णाटक के राज्यपाल की हैसियत से एक ऐसा वक्तव्य दिया जिसे केन्द्रीय सरकार के दृष्टिकोणों के अनुकूल नहीं माना गया और राष्ट्रपति ने उनसे स्पष्टीकरण तक भी माँगा।[18]

वस्तुतः संविधान ने राज्यपाल को दोहरी भूमिका प्रदान की है। यदि एक ओर उसे मुख्यमन्त्री की सलाह के अनुसार कार्य करना है तो दूसरी ओर उसे सम्पूर्ण राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए केन्द्र के अभिकर्ता के रूप में भी कार्य करना है।[19] एच. वी. कामठ ने इस सम्बन्ध में कहा था, 'राज्यपाल एक ऐसी कठपुतली है जिसे एक ओर मुख्यमन्त्री और दूसरी ओर प्रधानमन्त्री नचा रहा होता है।''

राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और उसको राष्ट्रपति की आँख और कान कहा जाता है। डा. अम्बेडकर ने राज्यपाल के कृत्यों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि राज्य की सरकारों को केन्द्रीय सरकार की मातहती में काम करना है और इस बात की

पूर्ति के लिए राज्यपाल कुछ को रोक लेगा ताकि राष्ट्रपति को इस बात के लिए समय मिल जाय कि वह देख सके कि राज्य की सरकारे जो काम करती हैं वे इस संविधान से अधिकृत नियमों के अनुसार करती हैं और केन्द्र की मातहती में करती हैं।

## राज्यपाल का चयन : सरकारिया आयोग की सिफारिश

सरकारिया आयोग के समक्ष प्रस्तुत तथ्यों से स्पष्ट होता है कि राज्यपाल पद पर सही व्यक्तियों का चयन नहीं किया गया। आलोचकों का कहना है 'संध के सत्ता धारी दल से निकाले गए असन्तुष्ट राजनीतिज्ञ जिन्हें अन्य कहीं भी स्थान नहीं मिलता, राज्यपाल नियुक्त कर दिए जाते हैं। पद पर रहते समय ऐसे व्यक्ति निष्पक्ष संवेधानिक अधिकारियों के रूप में कार्य करने के बजाय संघ सरकार के एजेण्ट के रूप में कार्य करते हैं।"[20] एक राज्य सरकार ने कुछ व्यक्तियों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिन्हें न्यायिक आलोचनाओं के कारण अपने मन्त्रिपद से त्यागपत्र देना पड़ा था और बाद में उनकी नियुक्ति राज्यपालों के रूप में हुई थी।

सरकारिया रिपोर्ट के अनुसार ''हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति से अक्टूबर 1984 तक की अवधि में राज्यपालों की हुई नियुक्तियों के सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि राज्यपालों की कुल संख्या के 60 प्रतिशत से अधिक ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया था। उनमें अधिकांश ने तो अपनी नियुक्ति के तुरन्त बाद ऐसा किया। राज्य पाल के रूप में नियुक्त ऐसे व्यक्ति जो अन्य व्यवसायों में दक्ष थे उनकी संख्या 50 प्रतिशत से भी कम थी।''[21]

सरकारिया रिपोर्ट के अनुसार "हमारी सिफारिशें हैं कि राज्यपाल के रूप में चुने जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को निम्नलिखित मानदण्डों पर खरा उतरना चाहिए:

i वह कुछ व्यवसायों में दक्ष हो,

ii वह राज्य से बाहर का व्यक्ति हो,

iii वह असन्तुष्ट व्यक्ति हो तथा राज्य की स्थानीय राजनीति के साथ अधिक आत्मीयता से न जुड़ा हो।

iv वह ऐसा व्यक्ति हो जिसने सामान्य रूप से तथा विशेष रूप से हाल ही की पिछली अवधि में राजनीति में अत्यधिक मुख्य रूप से भाग न लिया हो।

आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि किसी राज्यपाल का चुनाव करते गण' प्रधानमन्त्री को भारत के उपराष्ट्रपति तथा लोक सभा अध्यक्ष से मन्त्रण करनी चाहिए। ऐसी मन्त्रणा से राज्यपाल चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता बहुत द्य भागी। यह मन्त्रणा गोपनीय होनी चाहिए तथा सांविधानिक बाध्यता न अनोपचारिक होगी।[22] आयोग के अनुसार यह परम्परा होनी चाहिए कि अपना पद त्यागने के बाद कोई राज्यपाल, राज्यपाल के रूप में दूसरी पदावधि, या भारत के उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति के पद पर चुनाव लड़ने के अतिरिक्त केन्द्र या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य नियुक्ति या लाभदायक पद पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होना चाहिए। ऐसी परम्परा में यह भी आवश्यक है कि अपना पद छोड़ने या त्यागने के बाद राज्यपाल सक्रिय पक्षपाती राजनीति में नहीं लौटेगा।''[28]

आयोग के अनुसार राज्यपाल के रूप में किसी व्यक्ति का चयन करने के लिए राज्य के मुख्यमन्त्री से प्रभावी सलाह–मशविरा सुनिश्चित करने की प्रक्रिया अनुच्छेद 153 में समुचित' संशोधन करके संविधान में ही निर्धारित की जानी चाहिए।[24]

आयोग के अनुसार अनुच्छेद 200 स्पष्ट रूप से अथवा आवश्यक निहितार्थ द्वारा राज्यपाल को अपने कर्तव्य निष्पादन में सामान्य एवं विवेकाधिकार प्रदान नहीं करता जिसमें राष्ट्रपति के विचारार्थ भेजे जाने वाले विधेयक को आरक्षण भी शामिल है।

आयोग के अनुसार राष्ट्रपति के विचार के लिए बहुत बड़ी संख्या में विधेयक आरक्षित किए जा रहे हैं। सन् 1977 से 1985 के दौरान 1130 राज्य विधेयक राष्ट्रपति के विचार के लिए रखे गए थे।[25] ऐसे विधेयकों के निपटाने में बहुधा विलम्ब हुआ है और इसका कारण संघ और राज्यों के बीच विधान के मामलों में नीति' सम्बन्धी मतभेद है। आयोग ने सिफारिश की है कि राष्ट्रपति के विचार किए जाने के लिए रखे गए किसी विधेयक का निपटारा राष्ट्रपति द्वारा उस तारीख से चार माह की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए जिस तारीख को वह संघ सरकार को प्राप्त होता है। (ii) तथापि, यदि राज्य सरकार से स्पष्टीकरण माँगना अथवा अनुच्छेद 201 के परन्तुक के अधीन राज्य विधान मण्डल के पुनः विचार के लिए विधेयक को वापस करना आवश्यक समझा जाए तो यह कार्रवाई उस तारीख से 2 मास के भीतर की जाए जिस तारीख को संघ सरकार को मूल पत्र प्राप्त हुआ था। संक्षेप में, विधेयकों को आरक्षित करने की प्रणाली का उपयोग इस हद तक न किया। जाय कि विधायी मामलों में संघीय कार्यपालिका राज्य विधानमण्डल पर हावी हो जाए।

## केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में राज्यपाल की भूमिका

राज्यपाल केन्द्र तथा राज्य को बाँधने वाली कड़ी तथा संघ राज्यिक सम्बन्धों को विनियमित करने का माध्यम है। केन्द्र और राज्य के बीच संघर्ष में

राज्यपाल मध्यस्थ के कार्य को सही रूप से निभा सकता है। राज्यों के मन्त्रिमण्डल यह जानते हैं कि वे राज्यपाल के माध्यम से अधिक केन्द्रीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं और केन्द्रीय सरकार अपने अभिकर्ता की माँगों पर अधिक ध्यान देगी। इस सम्बन्ध में श्रीप्रकाश ने लिखा है, 'जब प्रदेश क मुख्यमंत्री एवं अन्य मन्त्री अपने राज्य की आवश्यकताओं को बड़े ही जोरदार शब्दों में वादी सरकार के सम्मुख रखते हैं, तब केन्द्रीय सरकार यह उत्तर दे सकती हैं। कि उनके सम्मुख सारा देश है केवल' कोई विशेष राज्य नहीं। परन्तु जब उनका प्रतिनिधि ही राज्यपाल के रूप में राज्य की विशेष आवश्यकताओं के विषय में केन्द्रीय सरकार को आवश्यक तुरन्त' मदद के लिए लिखता है, तब केन्द्रीय सरकार इसकी बात सुनती है तथा उसको कार्यान्वित करने का यथाशक्ति प्रयत्न करती है।"

प्रो. के. वी. राव ने लिखा है कि, "राज्यपाल वही है जो केन्द्र उसे बनाना चाहता है, व्यावहारिक रूप में राज्यपाल कुछ भी नहीं कर सकता और यदि राज्यपाल धर्मवीर और राज्यपाल चक्रवर्ती सक्रिय भूमिका निभाने की स्थिति में हैं तो इसका कारण यह है कि उसमें केन्द्र की मौन सम्मति था केन्द्र का निदशन है। वस्तुतः भारतीय संघ व्यवस्था में राज्यपाल का पद केन्द्रीय संस्था है, केन्द्र और राज्य को जोड़ने वाली कड़ी है। अतः केन्द्रीय सरकार को इसे अपने व्यस्त' राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का अभिकरण नहीं मानना चाहिए अपितु इसे केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को मधुर बनाने वाले पद के रूप में विकसित करना चाहिए।

## सन्दर्भ


1. सी. ए. डी. खण्ड VIII, पृ. 431.
2. उपर्युक्त, पृ. 454–6,
3. भारतीय संविधानअनुच्छेद 155,
4. उपर्युक्त अनुच्छेद 156,
5. बिहार में नित्यानन्द' कानूनगो की नियुक्ति के समय मुख्यमन्त्री से सलाह नहीं की गई। विरोध प्रदशित करने के लिए मुख्यमन्त्री राज्यपाल के स्वागत हेतु हवाई अड्डे पर नहीं गए।।
6. इस परम्परा के कतिपय अपवाद भी हैं, जैसे–डॉ. एच. सी. मुकर्जी को अपने राज्य बंगाल में राज्यपाल नियुक्त किया गया था और कर्णाटक राज्य में मैसूर के राजा को राज्यपाल बनाया गया था।
7. एन. एस. गहलौत, दि हि अफ दिन––इस क्वन्स्टीट्यूशनल इमेज एण्ड रियलिटी (त्रु' पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1977), पृ. 193.
8. पी. बी. मुखर्जी, श्री एलीमेंटल प्राब्लम्स आफ दि इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन (नेशनल, दिल्ली, 1902), पृ. 91.
9. ए. आर. सी., रिपोर्ट अफ दि स्टडी टीम आन सेंटर–स्टेट रिलेशंस (सितम्बर 1964), पार्ट 1, पृ. 18.
10. दि हिन्दुस्तान टाइम्स (दिल्ली संस्करण), दिसम्बर 9, 1960.
11. जी. एन. सिंह, हि रोल अफ स्टेट गवर्नर इन इण्डिया टूडे (इलाहाबाद, किताब महल, 1968), पृ. 14,
12. भारतीय संविधानअनुच्छेद 200
13. उपर्युक्त अनुच्छेद 31(3), 51(ए)(1).
14. उपर्युक्त, अनुच्छेद 200.
15. उपर्युक्त, अनुच्छेद 288(2).
16. उपर्युक्त, अनुच्छेद 213(1)
17. भारत सरकार गृह मन्त्रालय प्रतिवेदन, 1963–64 (9. 33) के अनुसार सन् 1963 में राष्ट्रीय ने 151 राज्य विधेयकों की स्वीकृति प्रदान की थी, तथा 18

अध्यादेशों की घोषणा करने के लिए पूर्व अनुमति प्रदान की थी।

18. धर्मवीर, मेमोयर्स ऑफ ए सिविल सर्जेण्ट' (विकास, 1875), पृ. 133.
19. इस बात के प्रमाण हैं कि राज्यपाल को अपने दायित्वों को केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में निभाना पड़ता है। जब जनवरी 1974 में तमिलनाडु में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया तो गवर्नर का प्रतिवेदन गृहमन्त्रालय में तैयार किया गया तथा राज्यपाल के. के. शाह ने कर्तव्यपरायणता के साथ उस पर हस्ताक्षर कर दिया।
20. केन्द्र–राज्य सम्बन्ध आयोग रिपोर्ट, भाग–1 (1988), पृ. 112,
21. उपर्युक्त, पृ. 123.
22. उपयुक्त, पृ. 115.
23. उपर्युक्त, पृ. 115.
24. उपर्युक्त, 124.
25. उपर्युक्त, पृ. 144.